उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्ति की अजस्त्र धारा को प्रवाहीत करनेवाले कवियों में महात्मा सूरदास जी का स्थान अग्रगण्य है। सूरदास जो को हिन्दी साहित्य के अकाश का सूर्य माना जाता है। सूरदास ने जिस युग में अपना साहित्य रचा उस युग में भारत पर विदेशी आक्रमण होते थे। देश में अशांतता का वातावरण था। अधिकतर मुसलमान शासक हिन्दु जन-जातियों पर अत्याचार करते थे। सामान्य जनता इन अत्याचारों से त्रस्त थी। इस युग में जाति-पाँति के बन्धन भी अधिक कठोर थे। लोगों के मन में विश्वास जगाने के लिए सूरदास ने कृष्ण-भक्ति की लहर दौड़ाकर शांति का वातावरण निर्माण किया।

मेरे इस लघु शोध-प्रबन्ध का विषय है' हिन्दी के विनय गीतों की परम्परा और सूरदास के विनय के पद ' इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय ' में मैंने सूरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारेमें विवेचन किया है।

सूरदास का जन्म १५३५ की वैशाख शुक्ला ५ मंगलवार को सीही नामक गाँव में एक निर्धन सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सूर जन्मांध थे अत: जन्मांध होने के कारण उनको माता-पिता का कभी स्नेह नहीं मिला। वे माता-पिता को भार स्वरूप जान पड़ते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सूरदास ने बचपन में ही अपना गृह त्याग दिया और गाँव के पास चार कोस दूर किसी तालाब के किनारे पीपल के वृक्ष तले बैठकर अपनी काव्य-साधना आरंभ की।

सूरदास की रचनाओं को लेकर विवाद है। उनकी प्राय: सभी रचनाएँ ' सूरसागर ' में एकत्रित की गयी हैं। सूरदास ने अपनी काव्य-साधना आचार्य वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग के अनुसार की है। वल्लभाचार्य जी सूरदास के दीक्षा गुरु थे।

इसके बाद मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध के ` द्वितीय अध्याय` में संस्कृत के विनय गीतों की परम्परा` का विवेचन किया है ।

संत और भक्त कवियों की आत्मा भक्ति से भरी हुई है, जो शब्दों का रूप धारण करके कविता के रूप में प्रकट हुई है । भक्ति-काव्य के अनेक रूप हैं । भक्ति-काव्य में भक्ति का सातत्य बना रहता है । ईश्वर से असाधारण प्रेम ही भक्ति है । भक्ति में साधक अपने उपास्य की सेवा करता है और उसके असाधारण गुणों का सेवन आचरण करता है । भक्त अपने इष्टदेव के दर्शन एवं मिलन के लिए उपासना करता है । ` भगवान ` के ध्यान का तेल की धारा की तरह क्षीण होकर भी न टूट जाना उपासना है । भक्ति में साधक का मन लाक्षा की तरह होता है, जो भगवान के अनेक गुणों की आँच में द्रवरूप होकर उस भगवान की ओर प्रवाही बनता हुआ बहता रहता है । मन की इस अवस्था का नाम ही भक्ति है ।

संस्कृत भक्ति साहित्य में विनय के अनेक अर्थ दिखाई देते है --` विनय` साधक का हृदय और परमात्मा को एकरूप करने का सहज साधन है । शरीर और मन को संयमित करना, मन को भगवान में लगाना साथ ही अपने जीवन के कर्तव्यों को पूरा करना मर्यादापूर्ण जीवन बिताना,अपने से पहले अन्य दुखियों का विचार करना,लौकिक या पारलौकिक प्रलोभनों से दूर रहना, भगवान के प्रति अटल विश्वास रखना तथा निष्काम भाव से अपना समग्र जीवन भगवान के प्रति समर्पित करना आदि सारे भाव` विनय ` के ही हैं ।

इस प्रबन्ध के` तीसरे अध्याय ` में मैंने ` विनय का स्वरूप विवेचन` किया है ।

` विनय ` याने विशेष प्रकार से झुकना । परमात्मा अथवा किसी भी शक्तिशाली के सम्मुख अपनी नम्रता या दीनता प्रकट कर उसके अनुग्रह की आकांक्षा करना ही विनय है ।` विनय` मानव-हृदय और परमात्मा को एक करने का सहज साधन है । अपने कार्य की सफलता को ईश्वरीय अनुग्रह समझकर उसका हृदय से धन्यवाद देना यह भी विनय है ।

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

विनय का हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हम जब शुभकार्य करते हैं, तो उसका प्रारंभ हम विनय से ही करते हैं। बिना विनय के हमारा कोई भी कार्य संपन्न नहीं होता, इसलिए विनय का स्थान हमारे जीवन में महत्वपूर्ण है।

विनय में मुख्यत: सात बातों का समावेश होता है, जिसे विनय की भूमिका कहा जाता है। बिना भूमिका के ` विनय ` परिपूर्ण नहीं होती वे भूमिकाएँ इस प्रकार हैं --

१ - दीनता

२ - मानमर्षणा

३ - भयदर्शन

४ - भर्त्सना

५ - आश्वासन

६ - मनोराज्य

७ - विचारणा।

इनके अतिरिक्त विनय में छ: नियमों का भी पालन होता है --

१ - अनुकूलस्य संकल्प

२ - प्रतिकूलस्य वर्जनम्

३ - रक्षिष्यातीति विश्वासो

४ - गोप्तृत्व वर्णन

५ - आत्मनिक्षेप और

६ - कार्पण्य।

उपर्युक्त सभी नियमों और भूमिका का पालन सूर ने अपने के पदों में किया है। सूरदास के अनेक पदों में आत्मदीनता का भाव दिखाई देता है।

प्रबन्ध के ` चौथे अध्याय ` में मैंने ` सूरदास जी के विनय के पदों के स्वरूप ` का विवेचन किया ।

सूरदास जी के विनय के पदों के अन्तर्गत छ: प्रकार की प्रपत्ति अथवा शरणागति के दर्शन होते हैं । जैसे --

१ भगवान के अनुकूल आचरण ।

२ भगवान के प्रतिकूल आचरण की निंदा ।

३ भगवान मेरा उध्दार करेंगे इस प्रकार की दृढ धारणा ।

४ भगवान को अपना रक्षक मानना ।

५ आत्मसमर्पन की भावना । और

६ कार्पण्य याने दीनता प्रकट करना ।

१ <u>भगवान के अनुकूल आचरण --</u>

इसमें भक्त अपने इष्टदेव के अनुकूल गुणों को धारण करने का संकल्प करता है । उदा --

सुवा चलि ता बन को रस पीजै ।
जा बन राम नाम अमृत रस, स्त्रवन-पात्र भरि लीजै ।
को तेरौ पुत्र पिता तू काको, गेहनि घर को तेरौ ।
काग, सृगाल स्वान को भोजन तू कहै मेरौ मेरौ ।
बन बारानसि मुकति क्षेत्र है, चलि ताकौ दिखराऊँ ।
सूरदास साधुनि की संगति, बडे भाग जो पाऊँ ।।

सूरदास कहते हैं, " हे मन रूपी तोते । तू चल और उस बन के रस को पी, जिस बन में राम नाम का अमृत रस है । उसी से तू अपने कान रूपी पात्र को भर ले । इस संसार में कौन तेरा पुत्र है ? तू किसका पिता है ? कौन तेरी बहू है ? यह शरीर तो कौआ-गीदड और कुत्ते का भोजन बनेगा और तू इसे अपनी-अपनी

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY

कहता है । इसलिए तू बन रूपी वाराणसी चल वह बन मुक्ति का क्षेत्र है ।' सूरदास जी कहते हैं,' वहाँ तुझे साधु की संगति मिलेगी, जो बड़े भाग्य से प्राप्त होती है ।'

२ भगवान के प्रतिकूल आचरण की निन्दा --

भगवान के प्रतिकूल आचरण की निन्दा के अन्तर्गत भक्त अपने अध्यात्मिक उत्थान के लिए जो पदार्थ अच्छा नही, उसका परित्याग करता है । उदा --

रे मन छाँडि विषै कौ रचिबौ ।
कत तू सुवा होत सेंवरि कौ, अंत कपासि न बचिबौ ।
अनंग तरंग कनक-कामिनि औ, हाथ रहैगो पचिबौ ।
सतगुरू कह्यौ कहतु हौ तोसौं, राम रतनु धन संचिबौ
सूरदास प्रभु हरि-सुमिरन बिनु, जोगी-कपि ज्यौं नचिबौ ।।

सूरदास कहते हैं,' हे मन । सांसारिक सुखों में रमना छोड दे तू सेमल का तोता क्यों हो रहा है ? सेमल के सुन्दर फूल को देखकर तोता लोभ में पड जाता है । जब तक उसका फल हरा रहता है, वह उसे कच्चा समझकर उसमें आशा लगाए रहता है, किन्तु जब वह पकता है तो उसमें रूई निकल आती हैं । तब तोता निराश हो जाता है । इसी प्रकार मनुष्य संसार के सुखों में भ्रमवश पडा रहता है , पर अन्त में उसके हाथ निराशा ही लगती है । काम की तरंग में तू सोने और नारी को चाहता है, किन्तु उसके लिए कष्ट उठाना ही तेरे हाथ होगा । इसलिए हे मनुष्य । तू मिथ्या अभिमान छोडकर राम का भजन कर, नही तो संसार की ज्वाला में तुझे जलना होगा ।' सूरदास जी कहते हैं,' भगवान के सुमिरन के बिना जोगी के बन्दर की भांति तू नाचता फिरेगा । बन्दर नाच-नाचकर अपने मालिक का पेट भरता है, पर उसे कुछ नहीं मिलता । इसी प्रकार संसार में काम करके तू मरेगा तुझे कुछ प्राप्त नहीं होगा ।'

३ <u>भगवान मेरा उध्दार करेंगे इस प्रकार की दृढ धारणा --</u>

भक्त इसमें यह आशा रखता है, कि भगवान मेरा उध्दार अवश्यक करेगा और मेरा कोई अनिष्ट नहीं होने देगा। ऐसी वह मनोकामना धारण करता है। उदा --

सरन गए को को उबार्यौ।
जहँ जहँ भीर परी संतनि कौ चक्र सुदरसन तहाँ संभार्यौ।।
+ + + +
ग्राह ग्रसत गज को जल भीतर, नाम लेत वाको दुख टार्यौ।
सूर स्याम बिन और करै को, रंगभूमि मे कंस पछार्यौ।।

सूरदास कहते है," शरण में जाने पर प्रभु ने किस-किस को नहीं उबारा ? जब-जब भक्तों पर संकट पडा उन्होंने अपने चक्र सुदर्शन को संभाल लिया। अंबरीष पर दुर्वासा ने क्रोध किया था। तब प्रभु ने दुर्वासा के शाप को दूर किया। ग्वालों के लिए उन्होंने गोवर्धन पर्वत उठाया और इन्द्र के अभिमान को नष्ट किया। भक्त प्रल्हाद पर कृपा की और नृसिंह रूप धारण करके प्रभु ने हिरण्यकश्यप को नाखूनों से फाड डाला। गजराज को ग्राह ले जब जल में पकडा था, तब गज ने प्रभु का नाम लिया, तब उन्होंने उसके दु:ख को दूर किया।" सूरदास जी कहते हैं," कृष्ण के बिना कौन इस प्रकार के कार्य कर सकता है ? "

४ <u>भगवान को अपना रक्षक मानना --</u>

भक्त इसमें भगवान को अपने रक्षक के रूप में देखता है, उन पर चाहे जैसा संकट हो भगवान उनकी अवश्य रक्षा करेगा ही ऐसी वह दृढ धारणा व्यक्त करता है। उदा ----

जाकाे मनमोहन अंग करै ।
ताकाे केस खसै नहिं सिर तै, जो जग बैर परै ।
हिरनाकसिपु-परहार थक्यो, प्रल्हाद न नैंकु डरै ।
अजहू लगि उतानपाद-सुत,अविचल राज करै ।
\+ + + + +
जाकाे बिरद है, गर्व-प्रहरी,सो कैसे बिसरै ।
सूरदास भगवंत - भजन करि, सरन गए उबरै ।।

सूरदास कहते हैं," जिसको भगवान कृष्ण अपना लें उसका एक बाल भी बाँका नहीं हो सकता, चाहे संसार उसका बैरी हो । हिरण्यकश्यप ने भक्त प्रल्हाद पर अनेक प्रहार किये, पर प्रल्हाद उससे तनिक भी नहीं डरे । आज तक उत्तानपाद के पुत्र ध्रुवजी आकाश में अटल हैं । द्रौपदी की लज्जा भगवान ने बचाई, भले ही दुर्योधन ने उसका चीर हरना चाहा । वस्त्रों की धारा इतनी बढी कि दुर्योधन का मान भंग हो गया । इन्द्र ब्रज पर बडा क्रोधित हुआ, पर कुछ न कर सका । गोवर्धन पहाड को धारण करके कृष्ण ने ब्रज के लोगों की रक्षा कर ली ।" सूरदास जी कहते हैं," भगवान का भजन करने से और उसकी शरण में जाने से सब का उध्दार होता है ।"

५ आत्म-समर्पण की भावना --

भक्त इसमें अपने आप को भगवान के हाथ में सौंप देता है । और तन, मन,धन को भगवान को वह समर्पित करता है । उदा --

माधो यह मेरी इक गाइ ।
अब आजु तै आपु आगे दई, लै आइबी चराइ ।
है अति ही हरिहाई हटकत हूँ, बहुत अमारग जाति ।
फिरति वेद बन ऊख उपारति,सबदिन अरु सब राति ।
हितु कै हिलै लैहु गोकुलपति,अपने गोधन माँहि ।
सुख सोवौं सुनि वचन तिहारे, देहु दया करि बाँटि ।।

निखुरक रहौं सूर के प्रभु जू, जिनि मन बूझाहु फेरि ।
मन-ममता रुचि सौं रखवारी, पहलैं लेहु निवेरि ।।

सूरदास कहते हैं," हे प्रभु । मेरी अविद्या मनोवृत्तिवाली गाय मैं आपको समर्पित करता हूँ । आप इसे चरायें । यह बड़ी उच्छृंखल है, इसे कितना भी रोकों, यह गलत रास्ते पर ही जाती है । यह सारे दिन-रात वेद रूपी गले के वन को उखड़ती है अर्थात वेद में बताए हुए धर्म-मार्ग का उच्छेदन करती है । अत: निवेदन है कि कृपा करके हे गोकुल के स्वामी । अपने गैयों के झुंड में इसे भी मिला लें । जब मैं आपके यह वचन सुनूँगा कि आपने इसे अपने गोधन में ले लिया है, तो मैं निश्चिंत होकर सो रहूँगा ।" सूरदास कहते हैं," हे प्रभु । आपकी स्वीकृति पर मैं निश्चिंत हो जाऊँगा ।आप अपना मन फिर न बदलें । हमारे मन और सांसारिक मोह को आप ही प्यार से सांसारिक वस्तुओं की ओर से लौटा लें ।"

कार्पण्य - दीनता --

इसमें भक्त अपनी निर्बलता प्रभु के आगे खोल कर रख देता है, तथा प्रभु की सर्व शक्तिमत्ता के सामने वह दीनता प्रकट करता है । इसे आत्म-निवेदन का अंग माना जाता है । उदा --

मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ।
केवल नैन को छाँड़ि महातप, आन देव को ध्यावै ।
विद्यमान गंगातट प्यासो, दुररमति कूप खनावै ।
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल पावै ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै ।।

सूरदास कहते हैं," मेरा मन प्रभु को छोड़कर और कहाँ शांति पा सकता है ? जिस प्रकार जहाज का पक्षी आकाश में उड़कर फिर जहाज पर ही आता है ,

क्योंकि चारों ओर पानी ही पानी होता है। इसी प्रकार मुझे भी और कहीं शरण नहीं मिलती। कमल के समान नेत्रवाले भगवान कृष्ण को छोड़कर अन्य किसी देवता का ध्यान करना इस प्रकार है जैसे गंगा के होते हुए भी उसके तट का कोई प्यासा कुआँ खोदे। प्रभु की कृपा सहज सुलभ पवित्र गंगाजल के समान है। जिस भौरे ने कमल के रस को चखा है, वह करील के कडुवे फल को क्यों खायेगा ? ' सूरदास जी कहते है, " कामधेनु को छोड़कर बकरी को दुहाने कौन जायेगा ? प्रभु की शरण सहज आनन्दप्रद है, किन्तु अन्य देवों की पूजा कष्टसाध्य और फलहीन है।"

इस प्रकार सूरदास जी के विनय के पदों में आत्म-दीनता का भाव दिखाई देता है।

मैंने ' पाँचवे अध्याय ' में भक्ति-काव्य में विनय गीतों का स्थान ' का विवेचन किया है। हिन्दी साहित्य में भक्ति-काव्य को सुवर्ण युग कहा जाता है। भक्ति-काव्य में भक्ति की दो धारायें प्रमुख रूप से प्रचलित हुई (१) निर्गुण काव्य-धारा और (२) सगुण काव्य-धारा।

निर्गुण काव्य-धारा में कबीर की ज्ञानश्रयी शाखा और जायसी की प्रेमाश्रयी शाखा को विशेष महत्व दिया जाता है। सगुण काव्य-धारा में तुलसी--दास जी का रामकाव्य और सूरदास जी का कृष्णकाव्य विशेष उल्लेखनीय है। भक्ति-काव्य के इन कवियों के काव्य में विनय भावना ओतप्रोत भरी हुई है।

कबीर के भक्ति-काव्य में विनय भावना बहुत ही मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है। कबीर निर्गुण निराकार होते हुए भी उनकी विनय-भावना सगुण साकार-सी प्रतीत होती है। उनके विनय के पदों में प्रपत्ति के छ: अंगों का समावेश हुआ है।

सूफी कवि जायसी के काव्य में भी विनय-भावना दिखाई देती है। जायसी भारतीय परम्परा के कवि नहीं हैं, फिर भी उनकी विनय-भावना में

पूर्ववर्ती एवं समकालीन भक्त कवियों का खासकर निर्गुण कवियों का प्रभाव दिखाई देता है ।

महात्मा तुलसीदास जी को विनय के पदों की रचना करनेवाले कवियों में अग्रगण्य माना जाता है । उनके विनय पत्रिका में विनय पदों बाहुल्य दिखाई देता है । उनकी विनय की भावना विविध माध्यमों द्वारा व्यक्त हुई है । --

१ संपूर्ण देवी-देवताओं एवं तीर्थ स्थानों के प्रति श्रध्दा की अभिव्यक्ति ।
२ सांसारिक जीवन के प्रति अनासक्ति ।
३ मन को वश में करने के लिए विभिन्न प्रकार से उद्बोधन देना ।
४ राम - नाम की महत्ता ।
५ राम की शरण में जाने की महत्ता ।

तुलसी के बाद विनय के पदों की रचना करनेवाले कवियों में सूरदास जी का स्थान बहुत ही उँचा है । उनके विनय के पदों में भक्ति की अजस्त्र धारा प्रवाहीत होती हुई दिखाई देती है । उनके विनय के पदों में आत्मदीनता का भाव दिखाई देता है । उनके विनय के पदों में प्रपत्ति के छ: अंगों का समावेश दिखाई देता है । उनके विनय के पदों में निम्न भाव पाये जाते हैं --

१ सभी काम भगवान के अनुकूल किये हैं ।
२ भगवान के प्रतिकूल एक भी काम न करने की मन को चेतावनी दी है ।
३ भगवान कृष्ण ही भक्त का रक्षण करनेवाले हैं , ऐसा मन को विश्वास दिलाया गया है ।
४ भक्त की सर्वस्व समर्पण की भावना व्यक्त हुई है ।
५ दास्य भक्ति के अनुकूल सूरदास के प्रारंभिक भक्ति काव्य में दीनता एवं कार्पण्य भावना लबालब भरी हुई है ।

प्राक्कथन में मेरे मन में जो प्रश्न उठे थे, उन सभी प्रश्नों के उत्तर पाँचवें अध्याय तक आते-आते मुझे मिल गये। सूरदासजी के पदों में उनकी उच्च कोटि की विनय भावना के दर्शन होते हैं। सूरदास हिन्दी साहित्य के सूर्य हैं। सूर-साहित्य से हिन्दी गौरवान्वित हुई है।